

सम्पादकीय

ऐसे में धर्म को हथियार बनाने का उनका यह प्रयास घोर हताशा को ही दर्शाता है। जो इस बात की भी पुष्टि करता है कि अमेरिकी जनता ने एक व्यक्ति की क्षमताओं से कहीं अधिक दायित्व उन्हें सौंपा है। जिसकी वजह यह भी है कि ट्रंप ईरान की क्षमताओं का आकलन करने में चूके हैं। वे जमीनी हकीकत से इतर लगातार अमेरिका की जीत के दावे कर रहे हैं। जब कि वास्तविकता यह है कि...

ईरान के खिलाफ अपशब्द हताशा का नतीजा

अमेरिका के इतिहास में शायद ही कोई डोनाल्ड ट्रंप जैसा अधीर, अपरिपक्व बयानवीर और व्यापारी सोच का राष्ट्रपति हुआ हो। संयम व गरिमा शब्द उनके शब्दकोश में ही नहीं हैं। सोशल मीडिया पोस्ट में अमेरिका–इस्राइल युद्ध के चरम के बीच उन्होंने जिन अपशब्दों का प्रयोग ईरान के लिये किया, वो उनकी हताशा को ही दर्शाता है। उनके बयानों की पूरी दुनिया के साथ अमेरिका के भीतर भी कड़ी आलोचना हुई है। आज अमेरिका के नागरिक भी सोचते होंगे कि दुनिया के सबसे शक्तिशाली लोकतंत्र में राष्ट्रपति को इतने निरंकुश अधिकार देना क्या प्रजातंत्र के हित में है? निश्चित रूप से होर्मुज जलडमरूमध्य को लेकर, अपशब्दों और धार्मिक संदर्भों के साथ तेहरान को दी गई चेतावनी, ट्रंप के आवेगपूर्ण उकसावे के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। एक महाशक्ति के मुखिया द्वारा ऐसी सतही भाषा का प्रयोग न केवल अशोभनीय है बल्कि घातक परिणामों की ओर ले जाने वाला भी है। जाहिरा तौर उनकी धमकियां ईरान को बातचीत की मेज पर लाने के बजाय, उसे और आक्रामक तरीके से जवाबी कार्रवाई करने को उकसाएंगी। दरअसल,अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप यह जताने की असफल कोशिश कर रहे हैं कि मौजूदा युद्ध मध्ययुगीन धर्मयुद्ध का विस्तार है। जिसमें सदियों तक ईसाई और मुसलमान आपस में वर्चस्व के लिये युद्ध करते रहे हैं। उन्होंने राजनीति में धार्मिक भावनाओं का भरपूर इस्तेमाल करते हुए ईरान में मार गिराए गए अमेरिकी फाइटर जहाज के पायलट के बचाव को ‘ईस्टर का चमत्कार’ बताने से भी गुरेज नहीं किया। जाहिरा तौर पर पुनरुत्थान और आशा का प्रतीक माने जाने वाले ईसाई धर्मावलंबियों के एक पवित्र दिन का हवाला देना, सैन्य अभियान को नैतिक और दैवीय रंग देने का ही एक असफल प्रयास है। निश्चित तौर पर इस तरह की सतही बयानबाजी एक जटिल भू–राजनीतिक संघर्ष को धार्मिकता की एक सरल कहानी में बदलने का जोखिम पैदा करती है। जो ट्रंप की सैन्य अभियान की तार्किकता सिद्ध करने की विफलता को भी दर्शाती है। यही वजह है कि अमेरिकी सांसदों ने यह पता लगाने के लिये

जांच की मांग की है कि क्या धार्मिक मान्यताओं का प्रयोग सैन्य कार्रवाई को सही ठहराने के लिये किया जा सकता है? निश्चित रूप से उन सांसदों की चेतावनी एक मूलभूत लोकतांत्रिक सिद्धांत पर आधारित है, वो है चर्च और राज्य का पृथक्करण का सिद्धांत। उनका तर्क है कि सैन्य निर्णय कानून,रणनीति और जवाबदेही द्वारा निर्देशित होने चाहिए, न कि ईश्वर या बाईबल की भविष्यवाणियों का हवाला देकर। निश्चित रूप से ट्रंप की इन आक्रामक ब्यानबाजियों और कारगुजारियों की कीमत आने वाले वर्षों में अमेरिकियों को चुकानी पड़ सकती है। वहीं दूसरी ओर ट्रंप की गैरजिम्मेदार ँमकियां पश्चिमी एशिया में अमेरिकी रक्षा कर्मियों के जीवन को भी खतरे में डाल सकती हैं। वहीं दूसरी ओर गुप्त राजनयिक प्रयासों को भी पटरी से उतार सकती हैं। दुनिया की महाशक्ति के सबसे शक्तिशाली नेता होने के नाते,उन्हें यह जरूर समझना चाहिए कि उनके बेटुके शब्दों से अमेरिकी विदेशी नीति को अपूरणीय क्षति पहुंच सकती है। जाहिरा तौर पर सशक्त नेतृत्व के लिये जिम्मेदारी के साथ विश्वसनीयता और स्पष्टता भी बेहद जरूरी है। ऐसे में धर्म को हथियार बनाने का उनका यह प्रयास घोर हताशा को ही दर्शाता है। जो इस बात की भी पुष्टि करता है कि अमेरिकी जनता ने एक व्यक्ति की क्षमताओं से कहीं अधिक दायित्व उन्हें सौंपा है। जिसकी वजह यह भी है कि ट्रंप ईरान की क्षमताओं का आकलन करने में चूके हैं। वे जमीनी हकीकत से इतर लगातार अमेरिका की जीत के दावे कर रहे हैं। जब कि वास्तविकता यह है कि सब कुछ खत्म करने के दावों के बावजूद ईरान अमेरिका व इस्राइल को पूरी टक्कर दे रहा है। वह खाड़ी में न केवल अमेरिका के मित्र देशों को निशाना बना रहा है बल्कि इस्राइल के भीतर व मध्यपूर्व में अमेरिकी सैन्य ठिकानों पर बड़े हमले कर रहा है। ट्रंप के बड़े-बड़े दावों के बावजूद न तो ईरान में सत्ता परिवर्तन ही हुआ है और न ही यह तय हो पाया कि ईरान भविष्य में परमाणु क्षमता हासिल नहीं कर सकता है। उलटे अमेरिका में ट्रंप की लोकप्रियता में तेजी से गिरावट आई है।

कच्ची पर्ची व्यवस्था पर रोक से किसानों को मिलेगा न्याय

कच्ची पर्ची व्यवस्था से किसानों के लगातार हो रहे शोषण के खिलाफ लेखक द्वारा दायर जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए , हाईकोर्ट ने 27 जनवरी, 2026 को सरकार को अवैध कच्ची पर्ची व्यवस्था पर रोक लगाने के दिशानिर्देश जारी किए । हरियाणा सरकार द्वारा अनुपालना करते हुए । अप्रैल को प्रदेश की कृषि उपज मंडियों के आढ़तियों को अवैध कच्ची पर्ची व्यवस्था तुरंत बंद करने और कृषि उपज बिक्री–तुलाई ...

भारत में कृषि विपणन का एक व्यवस्थित ढांचा मौजूद था, जो ग्रामीण आत्मनिर्भरता और स्थानीय मंडियों पर आधारित था। किसान न केवल अपने उपभोग के लिए, बल्कि विशेष फसलों जैसे कपास, मसाले, अनाज आदि का उत्पादन व्यापार के लिए भी करते थे। यह विपणन व्यवस्था ग्राम आधारित थी। किसान अपने उत्पादन के साधनों के स्वामी होते थे और स्वतंत्र रूप से अपनी फसल को बाजार में बेचने का निर्णय ले सकते थे। देश की आजादी के बाद, सर छोट्टराम द्वारा ब्रिटिश पंजाब में लागू किए गए कृषि उपज मंडी सुधारों के आधार पर कृषि नीति तैयार की गई और राज्यों ने कृषि उपज विपणन समिति अि नियम पारित किए, जिसके तहत स्थानीय मंडियां स्थापित की गईं। इसका उद्देश्य बिचौलियों के शोषण को कम करना और किसानों को उचित मूल्य दिलाना था। शुरुआत में, कृषि एवं कृषि प्रबंधन समितियां वास्तव में प्रभावी थीं। इन्होंने कृषि व्यापार में नीलामी आधारित मूल्य निर्धारण, मानकीकृत वजन प्रणाली, लाइसेंस प्राप्त व्यापारियों और विनियमित लेन–देन प्रक्रियाओं को लागू किया। इनके गठन के समय, एपीएमसी को नीलामी के माध्यम से बेहतर मूल्य सुनिश्चित करने और किसानों को विपणन की उच्च लागत और उपज के नुकसान से

बचाने के लिए एक लोकतांत्रिक समाधान के रूप में सराहा गया था। समय के साथ, किसानों की सुरक्षा के लिए बनाई गई व्यवस्थाएं ही उनके विरुद्ध कार्य करने



लगीं। एक पारदर्शी मूल्य निर्धारण प्रणाली ऐसी प्रणाली में परिवर्तित हो गई जहां कीमतें व्यापारियों और कमीशन एजेंटों द्वारा साज–बाज द्वारा तय की जाने लगी। दशकों से कई संरचनात्मक विकृतियां संघित होती रहीं।

भारत की कृषि को जटिल आपूर्ति शृंखलाओं से लगातार चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिनमें कई बिचौलिए शामिल हैं। साथ ही, प्रतिबंधात्मक घरेलू विपणन नीतियां और सीमा संबंधी उपाय भी हैं, जिनके कारण समीक्षाधीन अवधि के अि कांश समय में कीमतें औसतन अंतर्राष्ट्रीय

बाजार स्तर से नीचे रही हैं। इसके साथ ही, कई वस्तुओं में अंतिम उपभोक्ता मूल्य में किसानों का हिस्सा बेहद कम बना हुआ है। हालांकि, सीएसपी ने 23 फसलों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) की सिफारिश की थी, लेकिन प्रभावी खरीद मुख्य रूप से एफसीआई के माध्यम से चावल और गेहूं के लिए ही संचालित होती थी, जो धान की कुल बिक्री का केवल एक–चौथाई और गेहूं का 20 प्रतिशत ही एमएसपी पर बेचा गया। दशकों की नीति के बावजूद, अि कांश किसान गारंटीकृत न्यूनतम मूल्य प्राप्त नहीं कर सके। दालों या तिलहन की खेती करने वाले किसानों के लिए, एमएसपी अक्सर एक घोषणा मात्र रह जाती थी, जिसके पीछे कोई खरीद तंत्र नहीं होता था।

खाद्यान्न जांच समिति की सिफारिशों के बाद, सरकार ने 1950 के दशक के उत्तरार्ध में खाद्यान्नों में सरकारी व्यापार भी शुरू किया। इसके तहत सरकार ने किसानों को उचित मुआवजा सुनिश्चित करने के लिए गेहूं और चावल जैसी प्रमुख वस्तुओं की पूर्व निर्धारित कीमतों पर खरीद दी। वर्ष 1961 में पंजाब राज्य कृषि उपज मंडी अधिनियम पारित हुआ, जिसकी नियमावली पंजाब राज्य कृषि उपज मंडी अधिनियम रूल्स–1962 के अन्तर्गत लागू की गई। इस अधिनियम की सेक्शन–43, रूल 24

(11, 12 और 14) के अनुसार आढ़तियों को कृषि उपज बिक्री–तुलाई के तुरंत बाद किसानों को भुगतान और जे–फार्म जारी करना कानूनन अनिवार्य है। लेकिन मंडियों में इन नियमों का खुला उल्लंघन करते हुए, फसल उपज की सरकारी खरीद में कार्टेल बनाकर और अवैध कच्ची पर्ची (अनौपचारिक रसीद) व्यवस्था द्वारा समर्थन मूल्य से कम पर कृषि उपज खरीदने से किसानों का खुला शोषण हो रहा था। आढ़तियों की अवैध कच्ची पर्ची व्यवस्था से किसानों का आर्थिक नुकसान हो रहा है। कच्ची पर्ची व्यवस्था से किसानों के लगातार हो रहे शोषण के खिलाफ लेखक द्वारा दायर जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए, हाईकोर्ट ने 27 जनवरी, 2026 को सरकार को अवैध कच्ची पर्ची व्यवस्था पर रोक लगाने के दिशानिर्देश जारी किए। हरियाणा सरकार द्वारा अनुपालना करते हुए 1 अप्रैल को प्रदेश की कृषि उपज मंडियों के आढ़तियों को अवैध कच्ची पर्ची व्यवस्था तुरंत बंद करने और कृषि उपज बिक्री–तुलाई के तुरंत बाद कानूनन जे–फार्म अनिवार्य रूप से किसानों को देने के आदेश जारी किए गए। सरकार द्वारा कच्ची रसीद (पर्ची) व्यापार पर प्रतिबंध लगाए जाने से मंडियों में दस हजार करोड़ रुपये वार्षिक से अधिक के किसानों के शोषण और सरकारी धन के घोटालों पर भी लगाम लग सकेगी।

कानून जो हमने कभी सुधारे नहीं : युद्ध कभी भी कानूनविहीन नहीं रहा। इसकी हमेशा सीमाएं रही हैं। जिनेवा सम्मेलनों ने आधाररेखा स्थापित की –घायलों की रक्षा। युद्धबंदियों को बचाना, नागरिकों को अभयदान। लड़ाकू और गैर–लड़ाकू में अंतर। अतिरिक्त आचार संहिता–1 में माना गया कि युद्ध का स्वरूप बदल रहा है। नागरिक अब रणक्षेत्र से अधिक दूर नहीं रहे। भेद और आनुपातिकता वैधता ...

रणनीति का अर्थ अंतहीन युद्ध कभी नहीं रहा बल्कि उद्देश्य, क्रियान्वयन और समाप्ति के निर्णय किये जाते थे। लेकिन आज संघर्ष शुरू होते हैं तो लगता है रणनीतिकार युद्ध समाप्ति की कला भूल गये। पश्चिम एशिया में युद्ध के चलते अस्थिरता का माहौल है। रणनीति के इस भटकाव की कीमत कौन चुकाएगा। आजकल युद्ध खत्म नहीं होते। खिंचते जाते हैं, अपना स्वरूप बदल रहे हैं और खुद को जायज ठहराते हैं। यह रणनीति नहीं है। यह रणनीतिक रूपरेखा की असफलता है। मैंने युद्धों को खत्म होते देखा,और उन्हें खत्म होने से इनकार करते भी। सेना में, हमें युद्ध शुरू करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। हम आरंभिक व्यूह रचना, जोरदार हमले, शत्रु का घेरा तोड़ने व इच्छाशक्ति कुचलने का अध्ययन करते हैं। युद्ध का विस्तार करना समझते हैं। लेकिन एक अन्य शांत अनुशासन है जो कभी रणनीति को परिभाषित करता था, लेकिन अब धीरे–धीरे छुंाला रहा है। वह है, रुकने की कला। जिन संघर्षों का अंत बढ़िया हुआ, उनकी संरचना सीधी–सादी थी। दुश्मन को पूरी तरह मिटाना नहीं, बल्कि उद्देश्य में स्पष्टता रखना। तब, किसी में

इतनी हिममत होती थी कि वह फैसला कर सके कि मिशन पूरा हो गया है। इसलिए नहीं कि दुश्मन की कला भूल गये। पश्चिम एशिया में युद्ध के इसलिए कि काम पूरा हो गया था। बल का इस्तेमाल हुआ। तयशुदा सीमा तक पहुंचे। फिर आया सबसे मुश्किल आदेश रु रुको। घर वापसी करो। आज, वह मादा गायब है। कोई फैसला नहीं करता। संघर्ष खिंचते रहते हैं। बिना किसी तय अंत वाला युद्ध कोई अभियान नहीं होता। यह तो जान–माल की हानि के साथ भटकाव है। भारत का ‘गोल्ड स्टैंडर्ड’ (सर्वोच्च मानक) रु हमें किसी मानक की तलाश करने की जरूरत नहीं है। साल 1971 में, भारत ने आधुनिक इतिहास के सबसे निर्णायक अभियानों में से एक को अंजाम दिया। यह सिर्फ जीत नहीं थी। यह उसके बाद बरते गए संयम का उदाहरण था। हम वहां रुके नहीं रहे। हमने



अपनी जीत को कब्जे में नहीं बदला। हमें भान था कि ‘पूरा हुआ काम’ कैसे दिखता है। 1988 में मालदीव में, हमने दखल दिया, व्यवस्था की जरूरत नहीं है। साल 1971 में, भारत ने आधुनिक इतिहास के सबसे निर्णायक अभियानों में से एक को अंजाम दिया। यह सिर्फ जीत नहीं थी। यह उसके बाद बरते गए संयम का उदाहरण था। हम वहां रुके नहीं रहे। हमने



एशिया में, उद्देश्य बदलते रहते हैं जबकि युद्ध जारी है। कोई दिन निर्णायक जीत मिलने का अहसास करवाता है। अगले रोज लगता है लड़ाई अब लंबी खिंचेगी। बातचीत, विराम और तनाव इस कदर गडमड हो जाते हैं कि शब्दों का अर्थ ही समाप्त हो जाए। यूरोप में संघर्ष वर्षों तक खिंच गया। उद्देश्यों पर भू–राजनीति की कई परतें चढ़ती गई व स्पष्टता गायब हो गई।

लड़ाई इसलिए जारी नहीं है कि अंतिम लक्ष्य परिभाषित है, बल्कि इसलिए कि कोई इसे परिभाषित नहीं कर रहा। संघर्ष खुद–ब–खुद खिंचता जा रहा है। आमजन पर असर की हकीकत र रणनीति यह भूल जाती है कि इस भटकाव की कीमत कौन चुकाएगा। रणनीतिकार मैदान ए जंग की बातें करता है। नागरिक इसकी अवधि की कीमत चुकाता है। चाय की दुकान पर बैठा व्यक्ति सिद्धांत नहीं पढ़ा होता। वह तो बाधित हुई आपूर्ति शृंखलाओं से बढ़ती कीमतों का दंश झेलता है, जो कभी स्थिर नहीं होती क्योंकि युद्ध अंतहीन हो चले हैं। वे अपने परिवारों को युद्धक्षेत्रों में फंसा हुआ पाता है जहां से निकलने की कोई राह नहीं है। वह उस अनिश्चितता के साथ जीता है जो राष्ट्र की सोच में रम जाती है। जब युद्ध का कोई निश्चित समय होता है तो समाज संगठित होता है और उबरता है। जब नहीं तो होता, तो अर्थव्यवस्था और भावनाएं उसी के अनुरूप आकार लेने लगती हैं। यदि सफलता को परिभाषित न किया जाए, तो वह कभी प्राप्त ही नहीं होती। असफलता तब स्वाभाविक प्रक्रिया बन जाती है। क्षमता का विरोधाभास रु संघर्ष समाप्त करने के लिए हमारे पास पहले से कहीं

अधिक संसाधन हैं, फिर भी हम उन्हें समाप्त करने में असमर्थ हैं। ज़्लेन, साइबर ऑपरेशन और सटीक हमले घोषित युद्ध से इतर दबाव डालने का जरिया बन गए हैं। हम अनिश्चित काल तक न तो शांति और न ही युद्ध की स्थिति बनाए रख सकते हैं। यह एक तरह का जाल है। क्षमता ने निर्णय लेने की शक्ति का स्थान ले लिया है। युद्ध रोकने को जवाबदेही की आवश्यकता पड़ती है। बताने की जरूरत पड़ती है कि क्या पाया और क्या खोया। इसके लिए जिम्मेवारी लेने की जरूरत होती है। किसी नतीजे की घोषणा करने के मुकाबले में यह कह देना आसान है कि परिस्थिति स्वरूप बदल रही है। बल का प्रमपन = बल प्रयोग स्पष्टता और उद्देश्य के साथ किया जाए।



